अध्याय–1

आर्थिक भूगोल की परिभाषा, प्रकृति एवं विषय क्षेत्र

(Definition, Nature and Scope of Economic Geography)

आर्थिक भूगोल की परिभाषा (Definition of Economic Geography)

आर्थिक भूगोल अध्ययन का वह क्षेत्र है जो पृथ्वी तल पर मिलने वाली आर्थिक क्रियाओं की स्थानिक भिन्नता का अध्यय करता है। यह भिन्नता विभिन्न भौगोलिक कारकों के प्रभाव से स्थानीय, राष्ट्रीय तथा विश्वस्तर पर दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार य पृथ्वी तल की स्थानिक भिन्नताओं का अध्ययन आर्थिक क्रियाओं के निर्धारण के रूप में प्रस्तुत करती है। यहाँ पृथ्वी तल (Earth Surface) से अभिप्राय उस परिवेश (Milieu or environment) से लिया गया है जहाँ मानव जीवन अस्तित्व में रहता है। इस वायुमण्डल का निचला भाग, स्थलमण्डल का बाहरी भाग जहाँ लोग आर्थिक क्रियाएँ करते हैं, तथा जलमण्डल का मानव द्वारा दोह की सीमा तक पहुँचने वाला भाग सम्मिलित किया गया है, इसे हम जीवमण्डल के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। पृथ्वी का य परिमण्डल (Sphere) मानव द्वारा आर्थिक क्रियाओं के संपादन की सुविधाएँ प्रदान करता है तथा इसकी प्रकृति बदलते ही आर्थिक क्रिया का स्वरूप बदल जाता है जैसे मानव धरातल पर खनन, कृषि कार्य करता है लेकिन महासागरों एवं सागरों में मूलत: मत्स्य करता हैं। इस सम्बन्ध में आर्थिक भूगोल को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि इस विषय में पृथ्वी तल की उन स्थानिक विषमताओं का अध्ययन किया जाता है जो उत्पादन, विनिमय तथा उपयोग एवं सेवाओं से सम्बन्धित हैं। इनकी व्याख्या भूगोलवेत्ता मानचित्र एवं आरेखों एवं प्रतिरूपों (Models) की सहायता से करते हैं।

पृथ्वी पर आर्थिक क्रियाओं का इतिहास मानव विकास के प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है जिसके अंतर्गत मानव विकास की अवस्था एवं भौगोलिक परिवर्तन के अनुसार इनका स्वरूप बदलता रहा है। मानव का आर्थिक जीवन समाज के संगठित वर्ग से संबंधित है लेकिन प्राचीन काल में मानव का ज्ञान सीमित था। वह आदिम तरीके से रहता था तथा उसकी आवश्यकताएँ भरण–पोषण तक ही सीमित थीं लेकिन मानव की आवश्यकताओं के विकास के साथ ही उनके व्यवसाय भी परिवर्तित होते गये, इनमें वातावरण के घटकों के अनुसार अंतर आ गया तथा पृथ्वी तल पर आर्थिक भूदृश्य (Economic Landscape) विकसित हो गये। इस प्रकार आर्थिक भूगोल मानव व्यवसायों के साथ ही पृथ्वी तल पर तज्जनित भिन्न आर्थिक भूदृश्यों से भी प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है।

आर्थिक भूगोल का विकास प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत तीव्रता से हुआ है तथा बीसवीं सदी के तृतीय दशक में यह भूगोल की स्वतंत्र शाखा बन गई। इससे पूर्व आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन वाणिज्यिक भूगोल में किया जाता था। इसका जन्म सर्वप्रथम सन् 1862 में **एण्ड्री** द्वारा लिखित विश्व भूगोल (Geographie des welthandles) पुस्तक द्वारा हुआ इसमें मुख्यत: विभिन्न देशों के व्यापार सम्बन्धी आकड़ों एवं तथ्यों का संग्रह था। सर्वप्रथम 1882 में जर्मन विद्वान **गोत्स्ज** (Gotz) ने वाणिज्य भूगोल से भिन्न अर्थ में आर्थिक भूगोल को परिभाषित किया। इसी समय ब्रिटेन में **चिशोल्म** (Chisholm, G.) व अमेरिका में **ह्वाइटबेक** व **स्मिथ** (Whitebeack & Smith) भी वाणिज्य भूगोल का समर्थन कर रहे थे।

आर्थिक भूगोल के प्रारम्भिक विकास पर पर्यावरणीय निश्चयवाद (Environmental determinism) का प्रभाव था जिसमें आर्थिक क्रियाओं को प्राकृतिक पर्यावरण से नियन्त्रित एवं प्रभावित माना गया। 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में भूगोल के फ्रांसीसी सम्प्रदाय द्वारा मानव के आर्थिक क्रियाकलापों को प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव से मुक्त माना गया। इस विचारधारा को संभववाद कहा

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

गया जिसके संस्थापक विडाल डिला ब्लाश थे तथा इसका प्रारम्भ लूसियन फेब्रे ने किया। इस संकल्पना के प्रभाव के फलस्वरूप विश्व में आर्थिक विकास में तेजी आयी तथा विशेषकर पश्चिमी देशों ने इसका समर्थन कर प्राकृतिक शक्तियों को नजरन्दाज करते हुए आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया।

आर्थिक भूगोल का स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने में 1925 ई. में हेटनर व कार्ल ओ. सॉवर (C.O.Sauer) का यह मत कि भूगोल क्षेत्रीय विषमता (Areal differentiation) का अध्ययन करने वाला विषय है-से पर्याप्त बल मिला। 1925 ई. में ही संयुक्त राज्य अमेरिका में आर्थिक भूगोल नामक शोध पत्रिका का प्रकाशन किया गया जिनमें आर्थिक भूगोल के अध्ययन को व्यापकता प्रदान की गई।

स्पष्ट है कि विश्व के परिवर्तनशील परिवेश के कारण समय के साथ-साथ आर्थिक भूगोल के अर्थ तथा क्षेत्र में निरन्तर परिवर्तन होता रहा। समय के सापेक्ष विभिन्न विद्वानों ने आर्थिक भूगोल की विभिन्न परिभाषायें दी हैं।

सर्वप्रथम जर्मन विद्वान गोत्स्ज (Gotz) ने 1882 में आर्थिक भूगोल की निम्न परिभाषा दी-

"आर्थिक भूगोल में विश्व के विभिन्न भागों की उन विशेषताओं का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है जिनका वस्तुओं के उत्पादन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।"

("Economic Geography makes a scientific investigation of nature of world areas in their direct influence on the production of goods").

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि अपने प्रारम्भिक काल में आर्थिक भूगोल की विषय सामग्री नियतिवादी विचारधारा से प्रभावित थी। उस समय मनुष्य के कार्यों को प्राकृतिक वातावरण द्वारा निर्धारित माना जाता था। वस्तुओं के उत्पादन की अपेक्षा उन पर पड़ने वाले तत्त्वों या कारकों का अध्ययन आर्थिक भूगोल में महत्त्वपूर्ण माना जाता था। इसी क्रम में जी. चिशोल्म (1889) का वाणिज्य भूगोल एवं आर.एन. ब्राउन (R.N.Brown) का 1930 में आर्थिक भूगोल प्रकाशित हुआ।

ब्राउन (R.N.Brown, 1930) के अनुसार-"आर्थिक भूगोल भूगोल का वह पहलू है जिसके अन्तर्गत वातावरण (जैविक व अजैविक) के द्वारा मानवीय क्रिया कलापों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।"

("Economic Geography is that aspect of the subject which deals with the influence of the environment inorganic and organic on the activities of men.)"

उपर्युक्त परिभाषा में भी मानवीय क्रियाकलापों पर प्रभाव डालने वाले वातावरण के कारकों के अध्ययन पर ही विशेष बल दिया गया है। आर्थिक भूगोल के विकास के इस काल को प्राकृतिक वातावरण का आर्थिक क्रियाकलापों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन का काल कहा जा सकता है। लेकिन प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) के बाद आर्थिक भूगोल में आर्थिक गतिविधियों की क्षेत्रीय विभिन्नताओं के अध्ययन पर बल दिया जाने लगा जिससे आर्थिक भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में व्यापकता आई। इस क्रम में रिचार्ड हार्टशोर्न (1939) के प्रयास सराहनीय हैं। रिचार्ड हार्टशोर्न ने भूगोल को क्षेत्रीय विषमता का अध्ययन करने वाले विषय के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। इसी विचार का अनुमोदन करते हुए आर.ई.मर्फी (R.E.Murphy) ने आर्थिक भूगोल की निम्न परिभाषा दी-

"आर्थिक भूगोल मनुष्य की जीविकोपार्जन की विधियों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर मिलने वाली समानता व विषमता का अध्ययन करता है।"

(Economic Geography has to do with similarities and differences from place to place in the way people make a living").

इस प्रकार मर्फी के द्वारा प्रतिपादित परिभाषा के प्रभाव से आर्थिक भूगोल में आर्थिक कार्यों की प्रादेशिक भिन्नता के दृष्टिकोण का समावेश हुआ। मर्फी के विचारों से प्रभावित होकर अलेक्जेण्डर (Alaxander, J. W.) महोदय ने आर्थिक भूगोल की परिभाषा निम्न प्रकार दी-

"आर्थिक भूगोल भूतल पर मानव के आर्थिक कार्यों की प्रादेशिक भिन्नता का अध्ययन करता है। मानव के यह कार्य के उत्पादन, विनिमय तथा उपभोग से सम्बन्धित होते हैं।" ("Economic Geography is study of areal variations on the earth's surface in man's activities related to producing, exchanging and consuming wealth").

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

बॉक्स-1.1 : आर्थिक क्रियाएँ (Economic Activities)

1. उत्पादन (Production)

- प्राथमिक क्रियाएँ : निर्वाहन कृषि, पशुचारण, वानिकी, खनन, मत्स्यन।
- द्वितीयक क्रियाएँ : उद्देश्यपरक कृषि, व्यापारिक पशुपालन, उद्योग।
- तृतीयक क्रियाएँ : सेवायें, व्यापार, परिवहन एवं संचार।
- चतुर्थक क्रियाएँ : वित्त, स्वास्थ्य, मनोरंजन, शिक्षा, प्रशासनिक सेवायें, सरकारी नौकरशाही।
- पंचमक क्रियाएँ : उच्च स्तरीय प्रबन्धन एवं कार्यकारी प्रशासनिक स्थिति (निजी एवं सरकारी), वैज्ञानिक शोध एवं विकास सेवायें।

2. विनिमय (Exchange)

- परिवहन एवं वितरण सेवायें : मालभाड़ा परिवहन, परस्पर सम्पर्क या दूरसंचार पर सेवाओं एवं विचारों का विनिमय, सवारी परिवहन (व्यक्तियों का स्थान परिवर्तन), गोदाम, खुदरा एवं थोक व्यापार।

3. उपभोग (Consumption)

- मनुष्य द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यापार, वस्तु या सामान एवं सेवाओं का उपयोग करना।

अलेक्जेण्डर के अनुसार आर्थिक भूगोल में आर्थिक क्रियाओं की स्थानीय, राष्ट्रीय तथा विश्व स्तर पर अवस्थिति का विवेचन किया जाता है। अलेक्जेण्डर महोदय ने आर्थिक क्रियाओं को उत्पादन, विनिमय एवं उपभोग अर्थात् तीन वर्गों में विभाजित किया है। (बॉक्स-1.1)

तत्पश्चात् युद्धोत्तर काल में नगरीयकरण एवं औद्योगिकरण के फलस्वरूप विश्व की आर्थिक प्रगति में तीव्रता आयी। साथ ही प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग, संरक्षण एवं जीवन स्तर सम्बन्धी कई आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हुईं, जिनके समाधान हेतु आर्थिक भूगोल के विषय क्षेत्र में व्यापकता आयी। इसके फलस्वरूप आर्थिक क्रियाकलापों का ही अध्ययन महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया वरन् मानव की कल्याणकारी योजनाओं पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा अर्थात् समय के साथ-साथ आर्थिक भूगोल के विषय क्षेत्र में संशोधन के सराहनीय प्रयास किये गये। आर्थिक भूगोल के अध्ययन क्षेत्र को व्यापकता प्रदान करते हुए डी. एम. स्मिथ (D. M. Smith) ने इसे निम्न प्रकार परिभाषित किया-

''आर्थिक भूगोल, आर्थिक प्रक्रियाओं की स्थानिक अभिव्यक्ति का अध्ययन है जो वैकल्पिक स्थानों में वैकल्पिक उद्देश्यों हेतु संसाधनों का आवंटन करता है।''

("Economic Geography deals with the spatial expression of the economic mechanism which allocate, resources among alternative ends in alternative places.").

इस प्रकार स्मिथ के शब्दों में भूगोल कौन, कहाँ, क्या पाता है और कैसे? (Who gets what, where and how, *where is the Grass of Greens*, 1982) का अध्ययन करने वाला विषय बना। इन प्रश्नों के उत्तरों में ही आर्थिक भूगोल का मूल छिपा हुआ है। डेविड स्मिथ ने भूगोल में कल्याणकारी दृष्टिकोण को समाज कल्याण की सामाजिक, आर्थिक प्रारूप की संकल्पना के रूप में परिभाषित किया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में आर्थिक भूगोल संसाधन उपयोग की अपेक्षा संसाधन संरक्षण उत्पादन से आर्थिक वितरण एवं आर्थिक विकास की अपेक्षा संविकास (Eco-development) पर जोर देता है। आज आधुनिक भूगोल में किसी प्रदेश या वस्तु विशेष के अध्ययन की अपेक्षा सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है। वर्तमान में आवश्यकता

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

किसी क्षेत्र या देश तक सीमित नहीं वरन् सभी लोगों के अधिकतम कल्याण के लिये कार्य करने की है। अतः आर्थिक भूगोल का उद्देश्य कल्याणकारी समाज की स्थापना का है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से आर्थिक भूगोल का अध्ययन क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है। इसीलिये इसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के लिये इसकी कई शाखाएँ विकसित हो गयी हैं, जो विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का अधिक गहन और विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करती है।

आर्थिक भूगोल का विषय क्षेत्र
(Scope of Economic Geography)

प्रत्येक भौतिक, जैविक और सामाजिक-आर्थिक विज्ञान का अपना दर्शन, पद्धतिशास्त्र एवं कार्य क्षेत्र होता है। उदाहरण के तौर पर भूगर्भशास्त्र का सम्बन्ध भू-पृष्ठ एवं भूगर्भ की संरचना से, जनसांख्यिकी का सम्बन्ध मानव जनसंख्या की विशेषताओं से एवं जीव विज्ञान तथा वनस्पति शास्त्र का सम्बन्ध क्रमशः प्राणी व वनस्पति जगत है। इसी प्रकार भूगोल में प्राकृतिक तथा मानव निर्मित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। आर्थिक भूगोल को भी विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर सीमांकित किया जा सकता है। इस आधार पर आर्थिक भूगोल का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यह भूतल पर मानवीय क्रियाओं द्वारा वस्तुओं के उत्पन्न विनिमय व उपभोग का अध्ययन करता है।

इसके विषय क्षेत्र में मानव की आर्थिक गतिविधियों के वितरणों एवं उनके विभिन्न प्रतिरूपों की क्षेत्रीय विभिन्नताओं पर प्रकाश डालने वाले कारकों एवं प्रतिक्रियाओं को शामिल किया जा सकता है। आर्थिक भूगोल के विषय क्षेत्र को निम्न बिन्दुओं के द्वारा समझा जा सकता है-

(i) आर्थिक क्रियाकलापों के वितरण का अध्ययन-आर्थिक भूगोल के अध्ययन में आर्थिक क्रियाओं के वितरण प्रतिरूपों (Distribution Models) की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यद्यपि आर्थिक भूगोल में केवल उन्हीं आर्थिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो भू-पृष्ठ पर ठोस रूप में दृष्टिगत होती हैं अर्थात् जो आर्थिक क्रियायें भू-तल पर अपनी कोई ना कोई छाप छोड़ती हैं। उदाहरण के लिए कृषि, खनन, उद्योग, परिवहन इत्यादि ऐसी ही आर्थिक क्रियाएँ हैं जो भू-तल पर मूर्त रूप में प्रकट होती हैं। कुछ आर्थिक क्रियाएँ ऐसी भी हैं जो मूर्त रूप ग्रहण नहीं कर पातीं एवं उन क्रियाओं का भू-तल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी आर्थिक क्रियाओं को आर्थिक भूगोल में प्रत्यक्षतया सम्मिलित नहीं किया जाता है। उदाहरण राजस्व (Revenue) व कर (Tax) ऐसी ही क्रियाएँ हैं।

(ii) प्राकृतिक संसाधनों का मूल्यांकन एवं मात्राकरण-आर्थिक भूगोल के अध्ययन में प्राकृतिक संसाधन जैसे-मिट्टी, जल, जीवीय संसाधन, शक्ति एवं ऊर्जा संसाधन, खनिज एवं पशु संसाधनों के मूल्यांकन एवं मात्राकरण पर विशेष बल दिया जाता है ताकि संसाधनों का पोषणीय या संधृत (Sustainable) उपयोग हो सके।

(iii) अर्थतन्त्र का वातावरण से सम्बन्ध का अध्ययन-अर्थतन्त्र (Economy) तथा प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण में घनिष्ठ सम्बन्ध है। पर्यावरण का प्रभाव अर्थतंत्र पर पड़ता है वहीं अर्थतन्त्र भी प्राकृतिक पर्यावरण को प्रभावित करता है। यह एक जटिल प्रक्रिया होती है जिसमें पर्यावरण के अनेक कारक एक साथ या कभी-कभी पृथक् रूप से मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव डालते हैं जैसे किसी स्थान पर सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना कई पर्यावरणीय कारकों पर निर्भर करती है, जिनमें जलवायु, ऊर्जा, जल की उपलब्धता आदि कारक मुख्य हैं, दूसरी ओर कार्यात्मक गहनता का दबाव पर्यावरण पर पड़ता है अतएव दोनों पक्षों के मध्य एक ऐसे सम्यक् एवं अनुकूल अभिष्य अन्तर्सम्बन्ध (Optimim Inter-relation) स्थापित करने का प्रयास आर्थिक भूगोल में किया जाता है।

(iv) स्थानिक विशेषताओं का अध्ययन-आर्थिक भूगोल में पृथ्वी तल पर पायी जाने वाली आर्थिक क्रियाओं की स्थानिक भिन्नता का अध्ययन किया जाता है। आर्थिक भूगोल में प्रत्येक क्षेत्र की स्थानिक विशेषताओं का भी अध्ययन किया जाता है क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों की पृथक्-पृथक् विशेषतायें होती हैं। इन विशेषताओं का वृहद क्षेत्रों तथा सम्पूर्ण विश्व के सन्दर्भ में अध्ययन किया जाता है।

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

(v) मानवीय संसाधनों का मात्राकरण व संभाव्यताएँ-आर्थिक भूगोल के अध्ययन में जितना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राकृतिक संसाधनों के मात्राकरण एवं वितरण प्रतिरूप का है उतना ही महत्त्व मानवीय संसाधनों के मात्राकरण व संभाव्यताओं के अध्ययन का भी है। इसमें मानवीय संसाधनों का मात्रात्मक व गुणात्मक दृष्टि से विश्व वितरण प्रतिरूप का अध्ययन किया जाता है।

(vi) आर्थिक भूगोल का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष आर्थिक क्रिया-कलाप एवं प्राविधिकी की अन्त:क्रिया एवं तजनित अर्थतन्त्र के स्वरूप में प्रादेशिक एवं कालक्रमिक विभिन्नता का अध्ययन करना है।

(vii) आर्थिक भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में सांस्कृतिक-आर्थिक भू-दृश्य, आर्थिक उन्नति स्तर, स्थानिक संगठन एवं प्रादेशिक नियोजन आदि को भी सम्मिलित किया जाता है।

आर्थिक भूगोल के अध्ययन के उपागम
(Approaches to the study of Economic Geography)

आर्थिक भूगोल की विषय सामग्री में विविधता है। इसकी विषय सामग्री को कई तरह से देखा एवं विश्लेषित किया जाता है। विषय विश्लेषण के इस दृष्टिकोण को ही उपागम (Approaches) कहा जाता है। आर्थिक भूगोल की संकल्पना, विषय क्षेत्र एवं उद्देश्य आदि का भूगोल के सामान्य विकास क्रम के अनुसार विकास होने के कारण भौगोलिक अध्ययन में उपयोग किये जाने वाले विभिन्न उपागमों का आर्थिक भूगोल में भी प्रयोग किया जाता है। अत: भूगोल की अन्य शाखाओं की भाँति आर्थिक भूगोल में भी निम्न उपागमों का उपयोग किया जाता है:-

(1) क्रमबद्ध उपागम (Systematic Approach)-भूगोल के द्वैतवादों में से क्रमबद्ध बनाम प्रादेशिक उपागम का द्वैतवाद भी प्रमुख है। आधुनिक भूगोल के विकास काल में अलैक्जेण्डर वान हम्बोल्ट व कार्ल रिटर इसके जन्मादाता समझे जाते हैं। क्रमबद्ध उपागम के अन्तर्गत किसी भी वस्तु एवं तत्त्व (Phenomenon) विशेष के विश्व वितरण सम्बन्धी सामान्य विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। ये तत्त्व प्राकृतिक, गैर प्राकृतिक अथवा इनका अन्तर्सम्बन्धित समुदाय हो सकता है। क्रमबद्ध उपागम में प्रत्येक तत्त्व का अलग-अलग अध्ययन होता है एवं उसके विश्व वितरण प्रतिरूप का विश्लेषण करते हैं। कृषि एवं औद्योगिक उत्पादों के प्रतिरूपों के अध्ययन को वस्तुपरक उपागम (Commodity Approach) कहा जाता है। इस उपागम का आर्थिक भूगोल के अध्ययन में काफी महत्त्व है।

क्रमबद्ध एवं वस्तुपरक अध्ययनों का क्षेत्र सम्पूर्ण विश्व होता है। यह उपागम प्रादेशिक उपागम का विरोधी नहीं है। वास्तव में तत्त्वों के वितरण के प्रतिरूप के आधार पर इस उपागम में भी प्रदेश बनाये जाते हैं। इसे इस तरह कह सकते हैं कि क्रमबद्ध उपागम के तत्त्वों की प्रादेशिक विभिन्नता का विश्लेषण किया जाता है।

क्रमबद्ध उपागम	प्रादेशिक उपागम					
	चीन	भारत	इण्डोनेशिया	बांग्लादेश	वियतनाम	थाइलैण्ड
गेहूँ						
चावल						
मक्का						
गन्ना						
चाय						
कहवा						

विश्व में चावल उत्पादन : प्रादेशिक अध्ययन

भारत का कृषि भूगोल : क्रमबद्ध अध्ययन

चित्र-1.1 : क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक उपागम में अन्तर

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

(ii) प्रादेशिक उपागम (Regional Approach)-प्रादेशिक उपागम द्वारा किसी प्रदेश को अध्ययन की एक इकाई मानकर उसके संसाधनों का वितरण प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरणार्थ, भारत को संसाधन अध्ययन की इकाई मानने पर उसमें खनिज व शक्ति संसाधनों, जैविक संसाधनों, कृषि फसलों, जल एवं मृदा संसाधनों के मानवीय उपयोग तथा जनसंख्या का क्रमबद्ध (प्रकरणात्मक) अध्ययन किया जायेगा। अध्ययन की प्रादेशिक विधि भूगोल के साथ आर्थिक भूगोल में भी काफी महत्त्वपूर्ण रही है एवं आर्थिक भूगोल के प्रारम्भिक युग में प्रादेशिक उपागम का अधिक उपयोग होता था।

क्रमबद्ध उपागम में सम्पूर्ण विश्व अध्ययन क्षेत्र होता है परन्तु इतने बड़े क्षेत्र का गहन अध्ययन कठिन है और न ही किसी क्षेत्र के तत्त्वों का संश्लेषण ही। इसी उद्देश्य से भूगोल में प्रादेशिक उपागम के अध्ययन किये गये। इन अध्ययनों में विश्लेषण मात्र एक क्षेत्र तक ही होता है परन्तु यह विश्लेषण एक तत्त्व का न होकर सम्पूर्ण आर्थिक भू-दृश्य का होता है। सामान्यत: ऐसे अध्ययन में एक ही अंग की दशाओं का विश्लेषण होता है, लेकिन कभी-कभी प्रादेशिक विशिष्टता एवं असन्तुलन सम्बन्धी अध्ययनों में कई क्षेत्रों पर भी विचार किया जाता है। कभी-कभी प्रादेशिक अध्ययनों में सभी विषयों को न रखकर एक वस्तु का अध्ययन किया जाता है जिसे वस्तु परक प्रादेशिक अध्ययन (Commodity Regional Study) कहा जाता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रादेशिक उपागम में सर्वप्रथम, सम्पूर्ण विश्व को कुछ प्रदेशों में विभाजित करने का प्रयत्न किया जाता है उसके बाद प्रत्येक प्रदेश में सभी तत्त्वों के वितरण एवं उनके अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है। क्रमबद्ध व प्रादेशिक उपागम को सम्मिलित रूप से वितरणात्मक या संस्थागत अध्ययन पद्धति कहा जाता है।

(iii) सैद्धान्तिक उपागम (Theoretical Approach)-आर्थिक भूगोल को अधिक वैज्ञानिक बनाने की इच्छा रखने वाले भूगोलवेत्ताओं का मत है कि क्षेत्रीय विभिन्नता को स्पष्ट करने के लिये आर्थिक कार्यों के स्थानीयकरण सम्बन्धी सिद्धान्त (Theories of Location) तथा नियम विकसित करना अधिक उचित होगा। इसके प्रतिपादन में प्रादेशिक उपागम अक्षम है इसी कारण सैद्धान्तिक उपागम में कृषि, उद्योग आदि के स्थानीयकरण, उसके वर्गीकरण तथा वितरण की व्याख्या के नियम एवं सिद्धान्तों को बनाने पर जोर दिया जाता है। मॉडल बनाना भी एक उद्देश्य है। अल्फ्रेड वेबर का औद्योगिक अवस्थिति सिद्धान्त, वॉन थ्यूनेन का कृषि अवस्थिति सिद्धान्त एवं क्रिस्टालर का केन्द्रीय स्थान सिद्धान्त आदि मॉडल प्रमुख हैं, जिनका आर्थिक भूगोल में प्रयोग होता है।

सैद्धान्तिक भूगोलवेत्ता स्थानीयकरण की व्याख्या में चरों (Variables) के साहचर्य (Combination) पर विशेष जोर देते हैं एवं स्थानीयकरण के कारणों पर कम ध्यान देते हैं। सैद्धान्तिकरण में गणितीय एवं सांख्यिकी पद्धतियों का उपयोग अधिक हुआ है। सैद्धान्तिक उपागम से अध्ययन में एक आदर्श स्थिति की कल्पना की जाती है।

(iv) आगमनिक एवं निगमन विधियाँ (Empirical and Deductive Methods)-अध्ययन के उपरोक्त तीनों उपागम विश्लेषण की विधि के आधार पर पुन: दो वर्गों में रखे जा सकते हैं, क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक उपागमों में वर्णन, वर्गीकरण तथा व्याख्या को प्रमुख स्थान मिला है। इस प्रकार के अध्ययन प्रत्यक्ष अवलोकन से प्राप्त आनुभाविक ज्ञान पर आधारित होते हैं। अध्ययन की इस विधि को आगमनिक विधि (Empirical methods) कहते हैं। आनुभाविक ज्ञान पर आधरित इस विधि के विपरीत वर्तमान में सैद्धान्तिक तर्कों पर आधारित एक अन्य विधि का उपयोग किया जाने लगा है जिसे निगमन विधि (Deductive Method) कहा जाता है। इस विधि में कुछ मान्यताओं को लेकर तर्क के आधार पर उन परिस्थितियों में सम्भावित दशायें परिकल्पित की जाती हैं। इस विधि का उपयोग अधिकतम लाभ देने वाले वितरण के निर्धारण में अधिक होता है। कुछ ऐसे अर्थशास्त्री हैं जो वास्तविक उत्पादन प्रतिरूप के स्थान पर अनुकूलतम स्थिति को निर्धारित करना अधिक उचित समझते हैं जिसके लिये 'लीनियर प्रोग्रेमिंग' विधि का उपयोग किया जाता है।

(v) तन्त्र- विश्लेषण उपागम (System Analysis Approach)-वर्तमान में आर्थिक भूगोलवेत्ताओं द्वारा तन्त्र विश्लेषण उपागम की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। इसमें किसी अर्थतन्त्र के क्षेत्रीय संगठन का ज्ञान प्राप्त करने क लिये अधिक कार्यों की अन्योन्याश्रितता (Interdependence) तथा समग्रता (Wholeness) पर विशेष बल दिया जाता है। वास्तव में प्रणाली या तन्त्र का एक समूह होता है जिसमें तत्त्व एवं उनसे सम्बद्ध विशेषतायें परस्पर अन्तर्सम्बन्धित व आश्रित होती हैं। हॉल (Hall) एवं हैगेन (Hagen) के अनुसार तन्त्र, तत्त्वों का एक समूह है जिसमें तत्त्व एवं उनसे सम्बद्ध विशेषतायें परस्पर अन्तर्सम्बन्धित होती हैं। (System is a set of objects together with the relationship between the objects and their atributes) ल्यूडवीग वॉन

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

बेस्टालेन्फी ने 1951 में सामान्य तन्त्र सिद्धान्त (General Systems Theory) का प्रतिपादन किया था जिससे प्रभावित होकर सन् 1966 में हॉल व हैगन ने प्रणाली उपागम के महत्त्व पर प्रकाश डाला।

(vi) संसाधन-उपयोग-प्रक्रिया उपागम (Resources- Use Process Approach)-स्पेंसर (Spencer) नामक आर्थिक भूगोलवेत्ता ने आर्थिक भूगोल के अध्ययन पर एक अन्य उपागम संसाधन उपयोग-प्रक्रिया उपागम बताया। उनके अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी के संसाधन उपयोग हेतु प्रक्रियाओं को दो मूलभूत वर्गों में रखा जा सकता है-

(अ) वे प्रक्रियाएँ जो संसाधन उपयोग से सम्बन्धित हैं तथा

(ब) वे प्रक्रियाएँ जो तत्त्वों के क्षेत्रीय या स्थितिक अन्तराल (Intervening Space) को समाप्त करने से सम्बन्धित हैं। स्पेंसर (Spencer) का मत है कि संसाधन उपयोग संसाधन प्रसंस्करण गहन भूमि उपयोग से सम्बन्धित तकनीकों तथा स्थैतिक अन्तराल के विश्लेषण द्वारा आर्थिक भूगोल के गत्यात्मक स्वरूप को बहुत अच्छे तरीके से समझा जा सकता है।

आर्थिक भूगोल की शाखाएँ (Subfields of Economic Geography)

19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक भूगोल में प्राकृतिक तथ्यों एवं सामाजिक तथ्यों के अलग-अलग क्षेत्र नहीं होते थे परन्तु 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं जैसे विडाल डिला-ब्लाश (Vidal-de-la-Blache), जीन ब्रून्स (Jean Brunhes), ए. डिमांजिया (A.Demangeon) आदि के द्वारा मानव भूगोल के ग्रन्थों के लिखे जाने के बाद से भूगोल के विषय क्षेत्र के दो भाग हो गये जिनको भौतिक भूगोल व मानव भूगोल कहा गया।

आगे चलकर मानव भूगोल की एक महत्त्वपूर्ण शाखा के रूप में आर्थिक भूगोल स्थापित हुआ जिसमें मानव की आर्थिक क्रियाओं की क्षेत्रीय विभिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है। अत: आर्थिक भूगोल का विषय क्षेत्र भी बहुत व्यापक होता जा रहा है, जिसके कारण आर्थिक क्रियाओं की क्षेत्रीय विभिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है, जिसके कारण आर्थिक भूगोल के विभिन्न पक्षों का विस्तृत एवं गहन अध्ययन करने के लिये इसकी कई शाखाएँ विकसित हो गयी हैं। आर्थिक भूगोल की मुख्य शाखायें निम्नलिखित हैं-

(i) कृषि भूगोल (Agricultural Geography)-एम.बी.बालाबोन (M.B.Ballabon) ने 1957 में आर्थिक भूगोल की चर्चा करते हुये उसकी शाखाओं में कृषि भूगोल को प्रथम स्थान दिया। इस शाखा के अन्तर्गत कृषि की भौगोलिक दशाओं, कृषि प्रदेशों, कृषि उत्पादन एवं वितरण प्रतिरूप इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। कृषि भूगोल में उन सभी क्षेत्रीय विशेषताओं पर अध्ययन किया जाता है जो ग्राम्य-भू-दृश्यों को जन्म देती हैं।

(ii) औद्योगिक भूगोल (Industrial Geography)-औद्योगिक भूगोल में औद्योगिक कच्चे माल की प्राप्ति के स्रोतों, उत्पादन समस्याओं, उत्पादित वस्तुओं के व्यापार, उद्योगों के वितरण एवं समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। इनके अतिरिक्त किसी क्षेत्र विशेष के औद्योगिक संसाधनों के अभीष्ट उपयोग, औद्योगिक माल की उत्पादन लागत, नवीन तकनीकी विकास का उद्योगों एवं उनकी स्थिति पर प्रभाव इत्यादि बातों का अध्ययन भी औद्योगिक भूगोल की विषय वस्तु है।

(iii) वाणिज्यिक भूगोल (Commercial Geography)-वाणिज्यिक भूगोल मानव द्वारा सम्पादित विनिमय (Exchange) की क्रियाओं का अध्ययन है। इसके अतिरिक्त व्यापारिक केन्द्रों एवं उनके विकास के अध्ययन के साथ ही विनिमय-क्रियाओं पर भौगोलिक वातावरण के प्रभावों का अध्ययन भी वाणिज्य भूगोल में किया जाता है। अत: वाणिज्य भूगोल आर्थिक भूगोल की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है।

(iv) विपणन भूगोल (Marketing Geogrpahy)-सम्पादित विनिमय की इस शाखा का सम्बन्ध बाजार (Market) से है। इस शाखा में क्रेताओं एवं विक्रेताओं के क्षेत्र का अध्ययन किया जाता है। बिक्री संस्थानों की स्थिति उनकी बिक्री, सुविधाओं, बाजार क्षेत्र इत्यादि भी इसके विपणन क्षेत्र में सम्मिलित हैं। विपणन भूगोल अभी अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था से गुजर रहा है।

(v) संसाधन भूगोल (Resources Geography)-संसाधनों के निर्माण एवं उपयोग ने संसाधन भूगोल को जन्म दिया है। इसमें विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक एवं जैविक संसाधनों की उपलब्धि, वितरण, उपयोग एवं संसाधनों को प्रभावित करने वाली दशाओं का

Disclaimer : This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

विश्लेषण किया जाता है। मानव सहित सभी संसाधनों के संरक्षण, महत्त्व, अनुकूलतम उपयोग एवं संसाधन, प्रादेशिकरण भी संसाधन भूगोल के विषय क्षेत्र में ही समाहित हैं।

(vi) अधिवास भूगोल (Settlement Geography)–उपभोग से सम्बन्धित आर्थिक क्रियाओं ने अधिवास भूगोल को जन्म दिया है। आर्थिक भूगोल की इस शाखा में ग्रामीण एवं नगरीय अधिवासों की स्थिति, उत्पत्ति, प्रतिरूप एवं व्यावसायिक संरचना आदि तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। आर्थिक भूगोल की एक शाखा को दो उपशाखाओं में विभाजित किया जाता है–नगरीय (Urban) एवं ग्रामीण (Rural) अधिवास भूगोल।

(vii) परिवहन भूगोल (Geography of Transportation)–परिवहन भूगोल में परिवहन मार्गों, उनके विकास, उपयोग, यातायात तकनीक के विकास से यातायात मार्गों पर प्रभाव, परिवहन लागत, परिवहन साधनों एवं परिवहन विकास पर पड़ने वाले भौगोलिक दशाओं के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इसके अलावा बन्दरगाह व उनके पृष्ट प्रदेश (Hinterland), परिवहन समस्याओं, दूरीक्षय नियम (Distance Decay Rule), गुरुत्व मॉडल एवं अन्य सिद्धान्तों का अध्ययन भी परिवहन भूगोल में किया जाता है।

(viii) अन्य शाखाएँ (Other Branches)–आर्थिक भूगोल की उपर्युक्त शाखाओं के अतिरिक्त विषय क्षेत्र में विस्तार के साथ ही इसकी कई अन्य शाखाएँ भी विकसित हो रही हैं जिसमें पर्यटन एवं मनोरंजन भूगोल (Tourism & Recreation Geography), आय भूगोल (Income Geography), उपभोग भूगोल (Consumption Geogrpahy) एवं तृतीयक क्रियाओं (Tertiary Activities) से सम्बन्धित भूगोल इत्यादि प्रमुख हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक भूगोल का विषय-क्षेत्र मानव जीवन के विविध पक्षों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है एवं बहुत अधिक व्यापक एवं समुन्नत है तथा ये शाखाएँ स्वतन्त्र होते हुए भी घनिष्ट रूप से अन्तर्संबंधित हैं।

आर्थिक भूगोल का उद्देश्य (Aims of Economic Geography)

ज्ञान की किसी भी शाखा का एक निश्चित उद्देश्य या लक्ष्य होता है जिसकी प्राप्ति के लिये वह सदैव सचेष्ट रहती है। आर्थिक भूगोल का लक्ष्य मानव की आर्थिक क्रियाओं में पायी जाने वाली क्षेत्रीय विभिन्नताओं की सार्थक व्याख्या करना है। जिस प्रकार मानव भूगोल का उद्देश्य मानव और पर्यावरण के मध्य परस्पर कार्यात्मक सम्बन्धों की व्याख्या प्रादेशिक आधार पर करना है ताकि मानवीय कल्याण हो सके। उसी प्रकार आर्थिक भूगोल का मूल उद्देश्य भी देश काल के सन्दर्भ में बदलकर मानव कल्याण से सम्बन्धित हो गया है। वर्तमान में आर्थिक भूगोल का उद्देश्य मानव की आर्थिक प्रगति से अधिक सम्बन्धित है। सभ्यता, संस्कृति एवं तकनीकी विकास के साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। आर्थिक भूगोल इनके समाधान में लगकर अपनी सार्थकता प्रमाणित कर रहा है।

विगत शताब्दी में विश्व जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण विभिन्न संसाधनों के दोहन में बहुत वृद्धि हुई है। इसलिये वर्तमान की प्रथम आवश्यकता यह है कि विभिन्न संसाधनों एवं उत्पादन के तत्त्वों का अनुकूलतम उपयोग किया जाये। अन्यथा भावी पीढ़ियों को कई संकटों से गुजरना पड़ेगा। आज विश्व के विभिन्न देशों में आर्थिक प्रगति पर बल दिया जा रहा है वहीं आर्थिक विषमता की खाई भी बढ़ती जा रही है। अतः वर्तमान में महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इन आर्थिक असमानताओं को समानता में परिवर्तित करने के लिये किस प्रकार आर्थिक गतिविधियों को पुनर्गठित किया जाये।

प्रकृति में संसाधनों के वितरण में भी विषमता पायी जाती है। विश्व के कुछ क्षेत्र संसाधनों की उपलब्धता एवं जलवायु की दृष्टि से धनी हैं, जब कि कुछ क्षेत्र इस सन्दर्भ में निर्धन हैं। इसलिये विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विषमता उत्पन्न हो जाती है लेकिन निर्धन क्षेत्रों में हम विश्व के धनी क्षेत्रों की सम्पदा का पुनर्वितरण करके इस असमानता को दूर किया जा सकता है। इवर्सले महोदय ने 1975 में इसे इस प्रकार विवेचित किया– "हमारे समाज की गंभीर समस्याएँ वे हैं जो आर्थिक असफलता एवं हमारी वितरण व्यवस्था की अपर्याप्तता से सम्बन्धित हैं जो कि वृद्धि के इस काल में भी जनसंख्या के कुछ भाग को गम्भीर रूप से अलाभप्रद दशा में छोड़े हुये हैं।"

इस कारण समाज में कालिक और क्षेत्रीय विविधता देखने को मिलती है। इनका विश्लेषण और मूल्यांकन करना, विभिन्न स्थानों की सापेक्षिक स्थिति, एक ही स्थान पर विभिन्न चरों का सहयोग एवं किसी स्थान विशेष पर किसी गतिविधि के केन्द्रीकरण

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

के आंकड़ों के साथ ही मानव कल्याण के सही परिप्रेक्ष्य में उनका वितरण आर्थिक भूगोल का मूल उद्देश्य है ताकि मानवीय आर्थिक समस्याओं का समाधान हो सके एवं मानव कल्याण के प्रयत्नों को अधिकाधिक सफल बनाया जा सके।

अर्थशास्त्र एवं आर्थिक भूगोल (Economics and Economic Geography)

मानव अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये विभिन्न प्रकार के कार्य करता है उनमें वे कार्य जिनके द्वारा उपयोगी वस्तुओं एवं सेवाओं की उत्पत्ति होती है, आर्थिक कार्य कहलाते हैं। आर्थिक भूगोल में मनुष्य की आर्थिक क्रियायें तथा उन पर पड़ने वाले प्राकृतिक परिस्थितियों के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। अत: आर्थिक भूगोल में आर्थिक कार्यों एवं सेवाओं का प्रादेशिक वितरण कैसा है तथा उपर्युक्त कारक इस वितरण की कहाँ तक व्याख्या करते हैं, यह आर्थिक भूगोल का मुख्य विषय है।

जबकि अर्थशास्त्र में साधनों के विभिन्न आर्थिक कार्यों के लिये आवंटन की प्रक्रिया एवं संगठन का अध्ययन किया जाता है। जिनकी लागत व लाभ पर प्रभाव पड़ता है। ई.फ्रेडरिक (E.Friedrich, 1907), ए. हेटनर (A.Hettner 1905), एवं श्ल्यूटर (Schluter, 1906), इत्यादि विद्वानों का मत था कि आर्थिक भूगोल का उद्देश्य विश्व की आर्थिक सूचना एकत्रित करना है न कि पर्यावरण व मानव से सम्बन्धों की व्याख्या करना। इसी प्रकार एच. बर्नहार्ड (H. Bernhard-1915), का मत है कि आर्थिक कार्यों की प्रादेशिक विषमता के कारणों का विश्लेषण करने में भूगोलवेत्ता सक्षम हैं न कि अर्थशास्त्री। प्रो. रोबिन्सन ने 1932 में अपनी पुस्तक "An essay on the nature and the significance of economic science" में बताया कि "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें साधनों तथा सीमित एवं वैकल्पिक उपभोग वाले साधनों से सम्बन्धित मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।" अत: अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन के उपभोग, उत्पादन व विनिमय का मानव कल्याण के लिये प्रयुक्त मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है। दूसरी ओर आर्थिक भूगोल मानव के आर्थिक क्रियाकलापों, अर्थात् उत्पादन, उपभोग व विनिमय के स्थानिक वितरण व प्रक्रिया का अध्ययन है।

अर्थव्यवस्था किसी वस्तु की उन व्यवस्थापरक एवं प्रक्रियात्मक विशेषताओं का अध्ययन करता है जिसमें न्यूनतम लागत से अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकता है। आर्थिक भूगोल उन सभी तत्त्वों व प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है जिनमें विभिन्न प्रदेशों या क्षेत्रों में विषमताएँ मिलती हैं तथा इसके परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न आर्थिक प्रतिरूप विकसित होते हैं। अर्थशास्त्र एवं आर्थिक भूगोल के अध्ययन में उद्देश्य की दृष्टि से यही प्रमुख भिन्नता है।

आर्थिक भूगोल व अर्थशास्त्र दो पृथक् विषय होते हुये भी एक-दूसरे के विरोधी नहीं, वरन् पूरक हैं। दोनों में मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। वर्तमान में आर्थिक विकास के कारण दोनों का अध्ययन क्षेत्र बहुत व्यापक होता जा रहा है। अर्थशास्त्र में क्षेत्रीयता का समावेश, विशेषत: स्थानीकरण एवं आर्थिक विकास के अध्ययनों में होने लगा है। इसी प्रकार आर्थिक भूगोल के सिद्धान्तों के प्रतिपादन को महत्त्व दिया जा रहा है या दिया जाने लगा है। इस प्रकार दोनों में विषय-वस्तु सम्बन्धी अन्तर कम हो गया है। वर्तमान में दोनों विषयों में अध्ययन के उद्देश्य व दृष्टिकोण का जो प्रमुख अन्तर है वह भी निरन्तर कम होता जा रहा है।

आर्थिक भूगोल की आधारभूत संकल्पनाएँ (Fundamental Concepts of Economic Geography)

सभी विषयों के अध्ययन में आधारभूत संकल्पनाएँ (Basic Concepts) या अवधारणाएँ होती हैं। ये संकल्पनाएँ विषय-सामग्री को सरल ढंग से प्रस्तुत करती हैं। इन्हीं के आधार पर किसी विषय की समस्याओं व उद्देश्यों को समझा जा सकता है। संकल्पनाएँ किसी विषय की प्रगति का निर्धारण करती हैं। सिद्धान्त व संकल्पना (Theory & Concept) में पर्याप्त अन्तर होता है। सिद्धान्त उन अन्तर्सम्बन्धित वक्तव्यों को कहते हैं जो किसी परिस्थिति विशेष की व्याख्या में प्रामाणिक सिद्ध होते हैं तथा जिनके आधार पर अन्य क्षेत्रीय तथ्यों की गवेषणा की जाती है जबकि संकल्पना (Concept) विषय का स्वरूप बनाती है। एक संकल्पना के विवेचन से अन्य संकल्पनाओं का उदय या सूत्रपात होता है जिससे विषय की गहनता का आधार बनता है। आर्थिक भूगोल की कुछ आधारभूत संकल्पनाएँ निम्नलिखित हैं जिनके आधार पर ही उसमें सिद्धान्तों की सांख्यिकीय आधार पर अध्ययन किया जाता है।

(1) समदैशिक व विषमदैशिक क्षेत्र की संकल्पना (Concept of Isotropic and Anisotropic Space)-समदैशिक अंग्रेजी के ***Isotropic*** का पर्याय है जो ग्रीक भाषा के दो शब्दों ***Isos*** एवं ***Tropus*** से मिलकर बना है जिनका तात्पर्य क्रमश: ***Isos = समानता या बराबर तथा Tropus = धरातल*** है। भूगोल में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हैंगरस्टैण्ड (Hangerstand,

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

T.) ने किया। इसे सामान्यत: सैद्धान्तिक भूगोलवेत्ताओं की प्रयोगशाला कहा जा सकता है क्योंकि समदैशिक क्षेत्र वास्तविक विश्व में कहीं देखने को नहीं मिलता है। परन्तु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि यदि समदैशिक स्थल में जटिलतायें जोड़ी जायें तो यह वास्तविक विश्व की जटिलताओं को समझने में बहुत सहायक होता है। यह संकल्पना (Concept) गणितीय विचारधारा यूक्लीडियन 2 स्थानिक (Euclidean-2 Space) पर आधारित है। यूक्लीडियन 2 स्थानिक का तात्पर्य चपटा द्विविमीय क्षेत्र (Two-Dimentional) होता है। इसमें केवल लम्बाई व चौड़ाई ही होती है। यह अन्य भागों से अलग विशेपता रखता है।

वास्तविक संसार जिसमें हम निवासित हैं वह त्रिविमीय (Three-dimentional) है अर्थात् इसमें लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई या ऊँचाई है अत: यह विषमताओं से परिपूर्ण है जिसमें नदियाँ, झीलें, पर्वत, वन, मरुस्थल, कारखाने एवं आवासीय खण्ड आदि हैं। इसी असमानता या विषमता वाले धरातल (Surface) को **विषमदैशिक क्षेत्र (Anisotrapic space)** कहा जाता है।

आर्थिक भूगोलवेत्ता का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि कोई आर्थिक क्रिया कहाँ पर स्थित है एवं क्यों? वह अपना विश्लेषण शुरू करने से पहले वास्तविक संसार जो काफी विषमताओं से परिपूर्ण है उसको साधारण क्षेत्र वाला बनाता है। यहीं से समानता युक्त क्षेत्र (Isotropic Region) की उत्पत्ति होती है। समानता युक्त क्षेत्र अर्थात् जिसमें किसी प्रकार की असमानता न हो व सभी दशाओं में समानता लिये हुए हो, एक कल्पना मात्र ही है। वास्तविक जगत में ऐसा कहीं नहीं पाया जाता। इस संकल्पना पर सभी सैद्धान्तिक संकल्पनाएँ आधारित हैं। समानता व विषमता के क्षेत्र को निम्न आरेख द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है–

समदैशिक धरातल *विषम दैशिक धरातल*

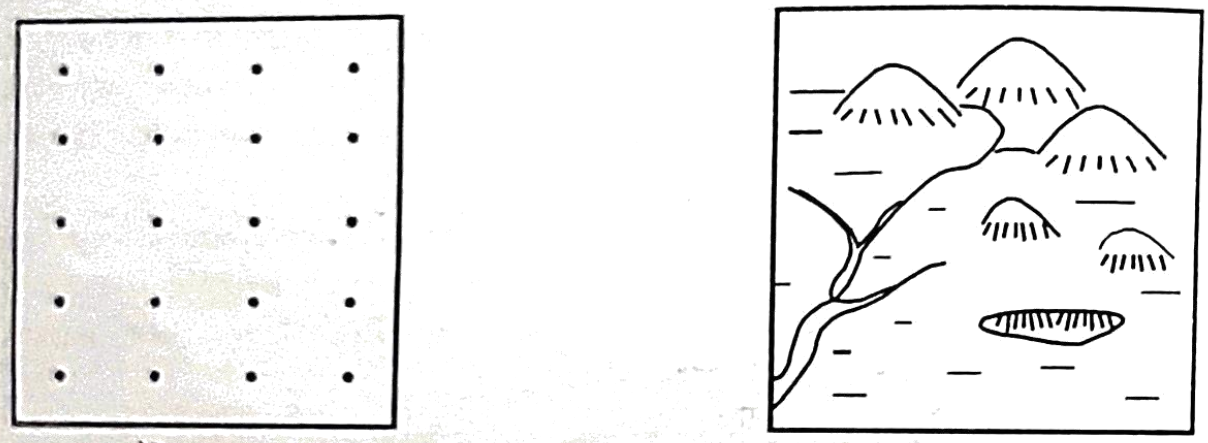

चित्र-1.2 : समदैशिक एवं विषम दैशिक धरातल

(2) स्थान व अवस्थिति की अवधारणा (Concept of Site & Situation)–पृथ्वी पर स्थिर वस्तुएँ कुछ ना कुछ स्थान (Site) अवश्य घेरती हैं। कई वस्तुएँ पृथ्वी की सतह पर कम स्थान घेरती है एवं कुछ वस्तुएँ अधिक स्थान पर विस्तृत होती हैं। यही संकल्पना स्थान की संकल्पना है। वस्तुओं का जिस धरातल पर विस्तार होता है वह उन वस्तुओं का बसाव स्थल होता है। इसका अर्थ उस घेरे हुये स्थान के आन्तरिक लक्षणों से है। उदाहरणार्थ नगर ढाल पर है या मैदानी भाग पर अथवा पठारी भाग पर। यदि यह स्थान नगर है तो उसकी आबादी, घनत्व, नगरीयकरण आदि सभी उस बसाव स्थान के लक्षण कहलाते हैं।

बसाव स्थिति, स्थिति की बाह्य विशेषताओं से अन्तर्सम्बन्धित है। इसी पर उसका तुलनात्मक महत्त्व आधारित होता है। इन बाह्य सम्बन्धों की प्रकृति निरन्तर गतिशील होने की होती है। अत: स्थान (Site) किसी स्थिति (Situation) के आन्तरिक सम्बन्धों को बताता है जबकि स्थिति बाह्य सम्बन्धों को परिभाषित करती है। स्थान एवं अवस्थिति की संकल्पना भौगोलिक सिद्धान्तों की संकल्पना की प्रकृति को समझने में काफी महत्त्वपूर्ण होती है। अत: आर्थिक भूगोलवेत्ता के लिये यह संकल्पना या अवधारणा एक आधारभूत संकल्पना है।

(3) मापक की संकल्पना (Concept of Scale)–मापनी वह युक्ति है जिसके द्वारा समस्त पृथ्वी या उसके किसी भाग को आवश्यकतानुसार आकार वाला मानचित्र बनाकर सही-सही प्रदर्शित किया जाता है। अत: सम्पूर्ण पृथ्वी या उसके किसी भू-भाग का मानचित्रण किसी मापनी के अनुसार ही किया जा सकता है। क्योंकि मापनी के उपयोग के बिना कोई मानचित्र बनाया जाता है तो कोई भी मानचित्र सम्बन्धित क्षेत्र के आकार, क्षेत्रफल एवं उसमें स्थित स्थानों की पारस्परिक दूरियों का शुद्ध प्रदर्शन नहीं कर सकता।

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

बिना मापनी के प्रयोग किये किसी क्षेत्र के अनुमानित चित्र को मानचित्र न कहकर रेखाचित्र (Sketch map) कहा जाता है। इस प्रकार दो दिये हुये बिन्दुओं या स्थानों के बीच की मानचित्र पर मापी गयी सीधी दूरी एवं उन्हीं दो बिन्दुओं की बीच धरातल पर मापी गयी वास्तविक दूरी के बीच के अनुपात को उस मानचित्र की मापनी कहा जाता है।

आर्थिक भूगोल में आर्थिक क्रियाकलापों के स्थानिक वितरण को बताया जाता है। इसलिये मापक की संकल्पना का काफी महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामान्यतया छोटे क्षेत्रों के मानचित्रण के लिये बड़ी मापनी का एवं बड़े या विस्तृत भू-भागों के मानचित्रण के लिये छोटे मापक का उपयोग किया जाता है। अत: सैद्धान्तिक भौगोलिक विवेचन हेतु मापक की संकल्पना महत्त्वपूर्ण है।

(4) क्षेत्रीय व्यवस्था की संकल्पना (Concept of Space System)–तन्त्र या प्रणाली (System) विभिन्न अवयवों का एक समूह है जिनमें परस्पर सम्बद्धता पायी जाती है। उदाहरणार्थ परिवहन प्रणाली (Transportation System), किसी नगर या क्षेत्र के सभी भाग जो परिवहन मार्गों (रेल या सड़क) द्वारा जुड़े हुये हैं, मिलकर परिवहन व्यवस्था का निर्माण करते हैं। अत: सभी प्रकार की व्यवस्थाएँ या तन्त्र जिनमें विभिन्न अवयव (Components) यदि स्थान घेरते हैं एवं जिनका सम्बन्ध दूरी से होता है, स्थानिक या क्षेत्रीय प्रणाली (Space System) कहलाती है। स्थानीय तन्त्र में स्थान या क्षेत्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। प्रणाली या तन्त्र एन.वेबस्टर (N.Webster) ने 1959 में अपने शब्दकोश "New International Dictionary" में परिभाषित करते हुये लिखा कि "व्यवस्था या तन्त्र विभिन्न तत्त्वों का समूह है जो किसी ना किसी प्रकार निरन्तर होने वाली पारस्परिक या अन्योन्य क्रिया का संयुक्त रूप है।" संक्षेप में कहा जा सकता है कि तन्त्र (System) के लिये दो बातों का होना आवश्यक है। प्रथम, विभिन्न तत्त्व (A Set of Components) व द्वितीय, विभिन्न तत्त्वों में पारस्परिक सम्बन्ध (Interrelation) कार्य के आधार पर व्यवस्था या तन्त्र का वर्गीकरण किया जा सकता है। सामान्यत: व्यवस्था या तन्त्र दो प्रकार की होती हैं :-

(i) बन्द तन्त्र (Closed System)–यह वह तन्त्र है जिसे सीमाबद्ध किया जा सकता है तथा परिवहन एवं संचार का आदान-प्रदान अवरुद्ध किया जा सकता है। इस पर मानव का नियन्त्रण होता है।

(ii) खुला तन्त्र (Open System)–खुले तन्त्र में उसके विभिन्न तत्त्व (Component) या अंग एक-दूसरे से गहन रूप से सम्बन्धित या प्रवाहित होते हैं। दूसरे शब्दों में यह वह व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक अंग किसी ना किसी अन्य अंग द्वारा संचालित होता है। इस पर मानव का नियन्त्रण नहीं होता है। जैसे शरीर प्रणाली। मानव शरीर एक तन्त्र है जो स्वचालित है। खुली प्रणाली में आन्तरिक कारक (जो प्रणाली में ही होते हैं) एवं बाह्य कारक (वे कारक जो किसी प्रणाली को बाह्य रूप को प्रभावित करते हैं) दोनों ही प्रकार के तत्त्वों का प्रभाव देखा जाता है।

सभी व्यवस्थायें क्षेत्रीय या स्थानिक प्रणाली ही होती हैं बशर्ते उन्होंने स्थान छोड़ रखा हो। स्थानिक तन्त्र खुले एवं बंद दोनों तन्त्रों के रूपों में कार्य करता है लेकिन भूगोल में खुली व्यवस्था का अधिक महत्त्व है। स्थानिक तन्त्र में स्थान (Site) एवं स्थिति (Location) दोनों ही विशेषताएँ शामिल होती हैं। अत: क्षेत्रीय प्रणाली में समय एवं मूल्य द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में अन्योन्य क्रिया (Interaction) होती है जैसे परिवहन प्रणाली। आर्थिक भूगोल के अध्ययन में अर्थव्यवस्था या आर्थिक तन्त्र (Economy) जो कि एक प्रकार से काफी महत्त्वपूर्ण है, अर्थव्यवस्था के विभिन्नों अंगों में परस्पर गहन सम्बन्ध पाया जाता है। इसका विस्तृत रूप में अर्थव्यवस्थाओं के साधारण प्रतिरूप नामक बिन्दु में विवेचन किया गया है।

(5) स्थानिक अन्तर्क्रिया की संकल्पना (Concept of Spatial Interaction)–पृथ्वी तल पर वस्तुओं, विचारों एवं मनुष्यों की एक स्थान से दूसरे स्थान पर गतिशीलता (Mobility) होती रहती है। प्राकृतिक तत्त्वों की गतिशीलता वायु एवं जल द्वारा होती है। वस्तुओं की गतिशीलता प्राय: परिवहन के साधनों द्वारा होती है। विचारों की गतिशीलता संचार (Communication) के साधनों द्वारा होती है। मनुष्यों की गतिशीलता किसी सवारी के साधन या पैदल यात्रा से होती रहती है।

विभिन्न स्थानों के बीच वस्तुओं, विचारों एवं मनुष्यों की गतिशीलता को ही स्थानिक पारस्परिक क्रिया या अन्त:प्रतिक्रिया (Spatial Interaction) कहते हैं। जिन स्थानों की केन्द्रीय अवस्थिति होती है, उनकी अभिगम्यता (Accessibility) अर्थात् दूसरे स्थानों से उन केन्द्रीय स्थानों की पहुँच का सम्बन्ध स्थानों की अवस्थिति से होता है। परिसंचरण के साधनों (परिवहन, संचार) द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान से जितनी मात्रा में पहुँच या अभिगम्यता के योग्य है उतनी ही मात्रा में उस स्थान की अभिगम्यता

Disclaimer: This study material has been taken from the books and posted for the education benefit of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

होती है। सामान्यत: किसी स्थान की अभिगम्यता जितनी अधिक मात्रा में होगी, उस स्थान की वस्तुओं व मानव एवं विचारों की गतिशीलता उतनी ही अधिक होगी अर्थात् स्थानिक अन्त:प्रतिक्रिया उतनी ही अधिक होगी। मानवीय क्रियाकलाप इसी गतिशीलता द्वारा विकसित होते हैं अत: सैद्धान्तिक आर्थिक भूगोल की यह एक आधारभूत संकल्पना है।

(6) आर्थिक भूगोल की समय एवं क्षेत्रपरक संकल्पना (Concept of the Time and Space in the Economic Development)-आर्थिक भूगोल में मानव की आर्थिक क्रियाओं में पायी जाने वाली क्षेत्रीय विभिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है। समय बितने के साथ-साथ प्रत्येक क्षेत्र या स्थान या प्रदेश की आर्थिक क्रियाओं के विकास में परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार के परिवर्तनों को कालिक परिवर्तन (Temporal change) कहते हैं। उदाहरण के लिये जिस प्रकार नगरीयकरण की प्रक्रिया समय बीतने के साथ-साथ गाँवों को नगरों के कोष्ठ में हजम कर देती है, उसी प्रकार किसी स्थान पर एक ही प्रकार की आर्थिक क्रिया के प्रारम्भ होने के साथ ही उस स्थान विशेष में अन्य प्रकार की मांगें उत्पन्न होने लगती है जिनकी पूर्ति के लिये और अधिक क्रियाएँ प्रारम्भ की जाती हैं। इस प्रक्रिया को वृद्धिकारी प्रभाव (Multiplying Effect) कहा जाता है। अत: किसी स्थान विशेष पर किसी एक आर्थिक क्रिया पर आधारित कई अन्य आर्थिक क्रियाएँ स्थापित होने पर वे समय के साथ-साथ बढ़ती जाती हैं। इसे ही आर्थिक भूगोल में आर्थिक विकास की समय परक या कालिक परिवर्तन की संकल्पना कहते हैं। लेकिन यह विचारणीय बात है कि सभी स्थानों या क्षेत्रों पर विकास का क्रम समान नहीं चलता है। विभिन्न देशों के स्वयं के विकास में विभिन्नता आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्रीय विकास में भी असमानताएँ पायी जाती है। अर्थात् कुछ आर्थिक क्रियायें तीव्र गति से क्षेत्रीय विस्तार पाती हैं जबकि कुछ क्रियाओं का क्षेत्रीय विकास सीमित रह जाता है। इसे ही आर्थिक विकास की क्षेत्रपरक संकल्पना या अवधारणा कहते हैं। वृद्धिकारी प्रभाव को रेखाचित्र 1.3 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

रेखाचित्र 1.3 से स्पष्ट है कि किसी एक आर्थिक क्रिया के प्रारम्भ होने पर तत्सम्बन्धी कई अन्य आर्थिक-क्रियाओं की उत्पत्ति होती है और उनमें समय में वृद्धि के साथ-साथ विकास होता जाता है।

(7) भौगोलिक क्षेत्र एवं उसकी माप की संकल्पना (Concept of Geographic Space and its Measurement)-आर्थिक भूगोल में एक प्रमुख संकल्पना भौगोलिक चित्र एवं उसकी माप की है। सामान्यता "पृथ्वी तल" या भूतल (Earth's surface) पर किसी स्थान की ज्यामितीय अवस्थिति (Geometrical Location) अक्षांश व देशान्तरों द्वारा बतायी जाती है लेकिन आर्थिक क्रियाओं की दृष्टि से किसी स्थान विशेष की स्थिति किसी दूसरे स्थान विशेष के सन्दर्भ में बताना अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है (आर्थिक भूगोलवेत्ता सापेक्षिक स्थिति से अधिक सम्बन्धित होता है न कि अक्षांशीय और देशान्तरीय अवस्थिति से)। उदाहरणार्थ एक कृषक अपने फार्म की स्थिति अक्षांश व देशान्तर की सहायता से शुद्धतापूर्वक आसानी से निर्धारित कर सकता है लेकिन वह दूसरे स्थानों से सापेक्षिक रूप से अधिक सम्बन्धित रहता है। अर्थात् उसका कृषि फार्म बाजार, उसके निवासित स्थान, सड़क आदि से कितना दूर है, अधिक महत्त्वपूर्ण है। जबकि कृषि फार्म की निरपेक्ष स्थिति बहुत कम महत्त्व रखती है।

आर्थिक भूगोल से दूरी क्रियात्मक या क्रियाशील क्षेत्र (Operational Space) के रूप में जानी जाती है। दूरी एवं क्षेत्र यदि समय तथा मूल्य (लागत) के द्वारा नापे जाएँ तो उसे क्रियात्मक क्षेत्र कहते हैं। उदाहरणार्थ नई दिल्ली की भौगोलिक स्थिति अक्षांश व देशान्तरीय स्थिति की अपेक्षा उसकी मुम्बई, कोलकाता या चेन्नई के सन्दर्भ में स्थिति ज्ञात करना अधिक उपयोगी है। आर्थिक भूगोल में विभिन्न क्षेत्रों के मध्य की वास्तविक दूरी की अपेक्षा इस दूरी में लगने वाला समय एवं मूल्य अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। क्योंकि इन पर विभिन्न आर्थिक क्रियाकलाप निर्भर होते हैं। अत: इस संकल्पना में हम विभिन्न स्थानों की वास्तविक दूरी की अपेक्षा क्रियात्मक क्षेत्र (समय क्षेत्र, लागत क्षेत्र एवं कार्य क्षेत्र) से सम्बन्धित होते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि क्रियात्मक क्षेत्र वास्तविक क्षेत्र से भिन्न होता है। क्रियात्मक क्षेत्र के कारण क्षेत्रीय विकृत्तियाँ (Space distortions) एवं व्यतिक्रम (Inversions) हो जाता है। वर्तमान समय में उपरोक्त सात सैद्धान्तिक आर्थिक भूगोल की आधारभूत संकल्पनाओं का उपयोग भौगोलिक अध्ययन को अधिकतम सूक्ष्म एवं विश्लेषणात्मक बनाने हेतु सैद्धान्तिक पद्धति के साथ ही विवरणात्मक पद्धति में भी किया जा रहा है। एक संकल्पना के विवेचन के अतिरिक्त अन्य सह-संकल्पनाओं का सूत्रपात होता है जिससे विषय-विशेष का अध्ययन अधिकाधिक गहन होता है। ये अग्रलिखित हैं-

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

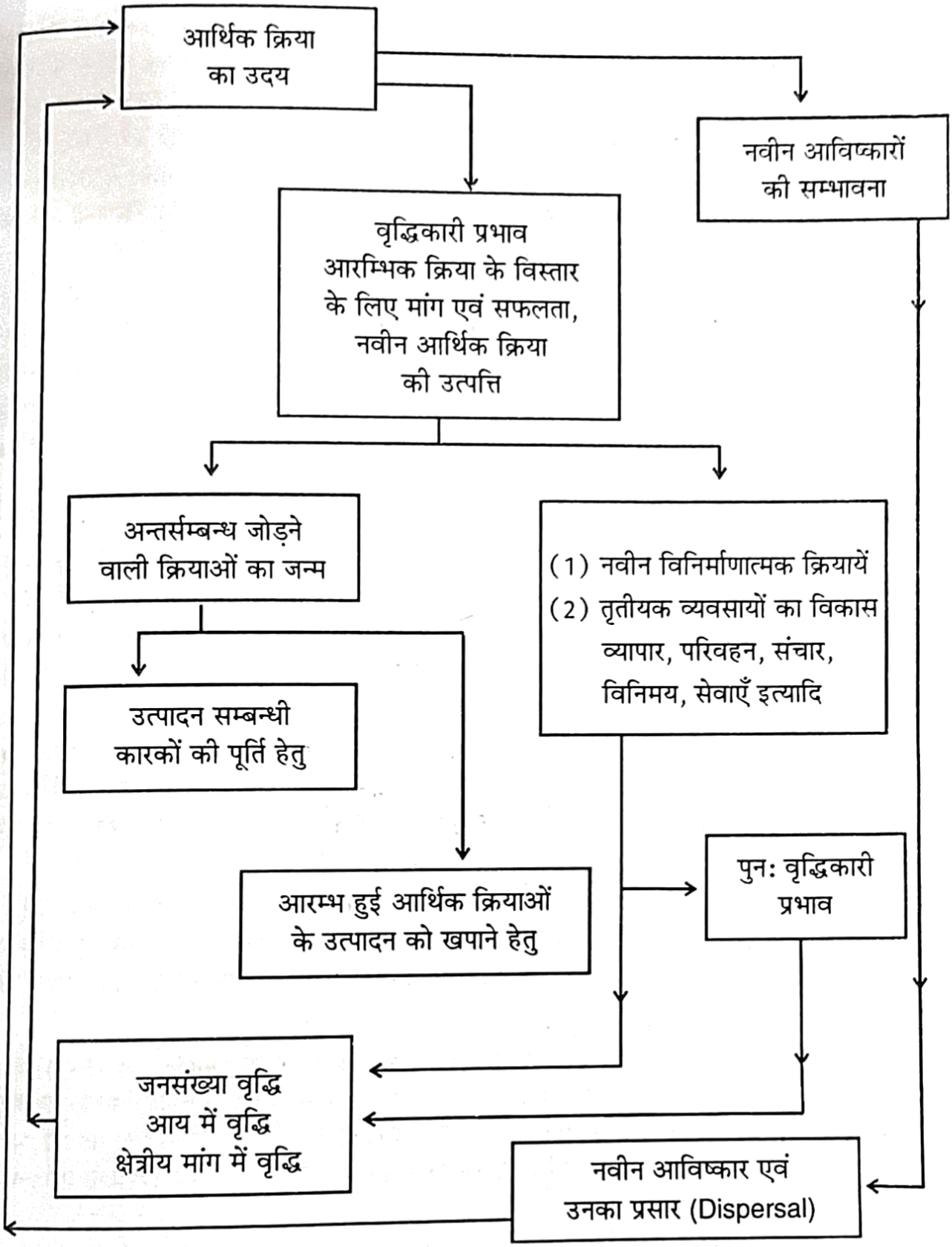

चित्र-1.3 : वृद्धिकारी प्रभाव

(i) आर्थिक भू-दृश्यों की संकल्पना (Concept of Economic Landscapes)–आर्थिक भू-दृश्य की संकल्पना का जन्म शब्द "Landschaft" से हुआ है। आर्थिक भू-दृश्य किसी क्षेत्र के अर्थतन्त्र के विविध पक्षों जैसे-कृषि, व्यापार, उद्योग आदि ुच्चयिक स्वरूप होता है। यह आर्थिक भूगोल की सर्वप्रथम आधारभूत संकल्पना आर्थिक भू-दृश्य की है।

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

(ii) आर्थिक भू-दृश्य स्थैतिक नहीं अपितु गत्यात्मक है (Economic Landscape is not Static but Dynamic)-आर्थिक भू-दृश्य सदैव एक जैसा नहीं रहता है। यह मनुष्य के तात्कालिक आर्थिक कार्यों को प्रभावित करता है और स्वयं इन मानवीय आर्थिक कार्यों से प्रभावित होकर परिवर्तित होता रहता है। इसी संकल्पना के आधार पर वेबर एवं अन्य विद्वान आर्थिक भू-दृश्य के क्रम विकास उपागम को अपनाकर आर्थिक तन्त्र में विभिन्न आर्थिक सिद्धान्त प्रतिपादित करने में सफल हुये हैं।

(iii) आर्थिक क्रियाओं की अवस्थिति की संकल्पना (Concept of the Location of Economic Activities)-प्रत्येक आर्थिक क्रियाएँ किसी ना किसी स्थान पर या क्षेत्र पर अवस्थित होती हैं। उनकी अवस्थिति के द्वारा आर्थिक क्रियाओं के विस्तार का ज्ञान होता है। इससे आर्थिक क्रियाओं की अवस्थिति से सम्बन्धित कारणों का भी बोध हो जाता है।

(iv) आर्थिक प्रदेशों की संकल्पना (Concept of Economic Regions)-भूतल पर विभिन्न आर्थिक क्रियाओं के वितरण प्रतिरूपों में काफी विषमता पायी जाती है। कोई क्षेत्र औद्योगिक क्रियाओं के लिये तो कोई कृषि क्रियाओं के लिये उपयुक्त होता है अर्थात् सभी क्षेत्र आर्थिक क्रियाओं के विकास में समरूप नहीं होते हैं। आर्थिक क्रियाओं की क्षेत्रीय एवं पारस्परिक सम्बद्धताजन्य सशक्तता में विषमता पायी जाती है। जिन आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित किन्हीं क्षेत्रों में एकतत्व या तत्वसमूह के मध्य समानता पायी जाती है, वे एक प्रकार के आर्थिक प्रदेश कहलाते हैं। तत्व या तत्वों की क्षेत्रीय सम्बद्धता की समानता के आधार पर ही आर्थिक प्रदेश का निर्धारण या सीमांकन होता है।

(v) स्थानिक कार्यात्मक अन्योन्य क्रिया की संकल्पना (Concept of Spatial Functional Interation)-विश्व के विभिन्न आर्थिक प्रदेशों में परस्पर कार्यात्मक अन्तर्सम्बद्ध होता है। किसी आर्थिक प्रदेश का अस्तित्व अन्य प्रदेशों से अन्योन्य क्रिया पर ही निर्भर है। वह अन्य प्रदेशों से प्रभावित होने के साथ ही स्वयं भी अन्य प्रदेशों को प्रभावित करता है। विभिन्न प्रदेशों में विभिन वस्तुओं का व्यापार तथा विनिमय होता रहता है। ओट्रेम्बा (Otramba) ने अपने पुस्तक "Allgemeine Welthandles and Watvekehes" में परिवहन व वाणिज्य को विभिन्न प्रकार के आर्थिक तन्त्रों के बीच कार्यात्मक अन्तर्सम्बन्ध बनाने का महत्त्वपूर्ण साधन माना है।

(vi) स्थानिक/कार्यात्मक संगठन की संकल्पना (Concept of Spatial Functional Organization)-ए. के. फिलब्रिक महोदय ने इस संकल्पना की विशद व्याख्या की है। उनके अनुसार क्षेत्रीय कार्यात्मक संगठन के निर्माण में किसी आर्थिक उद्योग की इकाई, केन्द्रीयता, स्थानीयकरण, अन्तर्सम्बन्ध, क्षेत्रीय नैरन्तर्य एवं अनैरन्तर्य तथा बढ़ते प्रतिफल या पैमाने के साथ-साथ समरूपता एवं समकेन्द्रीयता का प्रकारान्तर का योग रहता है।

(vii) प्रादेशिक आर्थिक विकास की संकल्पना (Concept of Regional Economic Development)-सन् 1920 में टायर महोदय ने आर्थिक भूगोल को व्यावहारिक दृष्टिकोण वाला विषय बताया था। यह संकल्पना क्षेत्रीय आर्थिक शृंखलाबद्धता द्वारा संसाधनों के समुचित उपयोग तथा अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने पर बल देती है। आर्थिक विकास नियोजन ही आर्थिक भूगोल के अध्ययन का अन्तिम लक्ष्य है।

(viii) आर्थिक विकास की अवस्था की संकल्पना (Concept of the Stage of Economic Development)-किसी भी भू-दृश्य (Landscape) में गत्यात्मक परिवर्तन क्रमबद्ध रूप से आते हैं। इससे उसके आरम्भ, विस्तार, विकास एवं पतन जैसी विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। आर्थिक भू-दृश्यों की व्याख्या के लिये वेबर ने संसाधन, संरचना, प्राविधिक-क्रियाओं एवं आर्थिक विकास की अवस्था का सहारा लिया है। आर्थिक विकास की अवस्था के अनुसार विश्व के विभिन्न राष्ट्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) विकसित देश (Developed Countries)

(b) विकासशील देश (Developing Countries)

(c) अविकसित देश (Undeveloped Countries)

कोई देश आर्थिक विकास की किस अवस्था (Stage) में है, इसका निर्धारण आर्थिक क्रियाओं के गहन भौगोलिक अध्ययन के बाद ही किया जा सकता है।

Disclaimer: This study material ... students alone and I do not ...

Scanned By Scanner Go

Disclaimer: The content displayed in the PPT has been taken from variety of different websites and book sources. This study material has been created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.